SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

प्राचीनकाल में भारतीय अर्थव्यवस्था (हड़प्पा काल से गुप्तकाल तक)

सरिता कुमारी, इतिहास विभाग
बिनोवा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग, झारखण्ड, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
सरिता कुमारी

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 13/06/2023
Revised on : -----
Accepted on : 20/06/2023
Plagiarism : 01% on 13/06/2023

शोध सार

प्राचीन भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। भीमबेटका से प्राप्त शैलचित्र, नर्मदा घाटी की हुई खुदाई तथा अन्य पुरातात्विक प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि भारत आदिमानवों की कर्मभूमि रही है। भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रारंभ हड़प्पा सभ्यता को माना जाता है। प्राप्त साक्ष्यों के अनुसार इस काल की अर्थव्यवस्था कृषि, पशुपालन और व्यापार पर आधारित थी। कई तरह के अनाज का उत्पादन होता था। नगर की व्यवस्था चाक चौबंद थी। यहां के लोग व्यापार में परांगत थे। ऋग्वेदिक काल में कृषि को पवित्र पेशा माना जाता था, जबकि पशुपालन में गाय का महत्व मां के बराबर था। प्राचीनकाल में लिखे गए भारतीय ग्रंथ वेद, मनुस्मृति, अर्थशास्त्र, रामायण और महाभारत में प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था में सहायक पशुपालन, खेती के साथ वाणिज्य व्यापार का उदय, वस्तु विनिमय के साथ सिक्कों के चलन का जिक्र है। वहीं खान, खनिज की खोज के साथ बदलते व्यापारिक स्वरूप और संगठित होते व्यापारी के साथ सामाजिक दशा में बदलाव और बाजार की ताकत, इनमें होनेवाली बेईमानी से निपटने के लिए बल का प्रयोग और भारतीयों के साथ विदेशियों का व्यापारिक संबंधों की इस लेख में विवरणी दी गई है।

मुख्य शब्द

अर्थव्यवस्था, संस्कृति, व्यापार, वाणिज्यिक, आविष्कार, विनिमय.

परिचय

भारतीय सभ्यता चार हजार साल से अधिक पुरानी सभ्यता मानी जाती है। अलग–अलग इतिहासकारों ने इसे अलग–अलग काल और खंड में विभाजित किया है। इस लेख में हड़प्पा, ऋग्वेदिक, उत्तर वैदिक, महाजनपद और बौद्ध काल, मौर्य काल, मौर्योत्तर काल तथा गुप्त

काल के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था कैसी थी, इसका उल्लेख है। मानव जीवन आखेट से शुरू हुआ। यह व्यवस्थित होते हुए खेती किसानी से होकर उद्योग–धंधों के विकास तक पहुंचा। उसके बाद राज्य गठन और शासन व्यवस्था का निर्माण हुआ। वर्तमान की जो अवस्था है, वह क्रमिक विकास का परिणाम है।

विष्णु पुराण 2/3.1 में उल्लेख है कि उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्। वर्ष तद् भारतं नामी भारती यत्र सततिः।। अर्थात् समुद्र के उत्तर में तथा हिमालय के दक्षिण में जो स्थित है वह भारत देश है। वहां की संतानें 'भारतीय' हैं। विकासवाद के सिद्धांत ने यह स्थापित किया कि जीवों के क्रमिक विकास के उपरांत ही मानव वर्तमान अवस्था में पहुंचा है। माना जाता है कि भारतीय इतिहास में पाषाणकाल को मानव जीवन का आरंभिक दौर माना गया है। कबीलाई जिंदगी बिता रहे इस काल में लोगों के पास अनाज की उपज बहुत कम थी, हालांकि लोग स्वेच्छा पूर्वक एक दूसरे से सामग्री लेनदेन किया करते थे। लोग अपने सरदार को नेतृत्व करने के बदले स्वेच्छा से अनाज सहित अन्य चीजें भेंट में देते थे, बाद में यह व्यवस्था जबरदस्ती वसूली का जरिया बनी। उन दिनों भेंट वसूली का यह तरीका कई प्रकार का हुआ करता था। इस काल के लोग खानाबदोश जिंदगी बिताते थे। इन्हें कृषि, पशुपालन, लिपि ज्ञान और बर्तनों के निर्माण की जानकारी नहीं थी।[1]

हड़प्पा सभ्यता की अर्थव्यवस्था कृषि, पशुपालन एवं व्यापार–वाणिज्य पर आधारित थी। इस काल में लोग गेंहू, जौ, राई, मटर, तिल व सरसों जैसे खाद्य पदार्थों का उत्पादन किया करते थे। लोथल और रंगपुर से चावल के साक्ष्य मिले हैं जबकि लोग अधिक मात्रा में गेहूं और जौ का उत्पादन किया करते थे। माना जाता है कि सिंधुवासी कपास के उत्पादन करने वाले पहले लोग थे। इस काल में मिले प्रमाणों के मुताबिक कृषि के साथ लोग बैल, भैस, सुअर, बकरियां, ऊंट तथा गधे को पालते थे। गधे का उपयोग बोझ ढोने के लिए जबकि ऊंट का उपयोग खेतों की जुताई के लिए किया जाता था। रामशरण शर्मा अपनी पुस्तक प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं में लिखते हैं कि जैसे–जैसे अनाज का उत्पादन बढ़ा, जनजातीय समाज का स्वरूप बदलता गया। सिंधु सभ्यता के दौरान उद्योग धंधों का विकास हुआ था। हड़प्पा और मोहनजोदाड़ो में नगरीय व्यवस्था का उदय हुआ था। यहां की ईंटे मजबूत हुआ करती थीं।[2]

शैफर ने अपने अध्ययन में इस बात पर जोर दिया है कि हड़प्पावासी लोहे से परिचित थे।[3] इस काल में धातुओं, लकड़ी, पत्थर और मिट्टी से कई सामग्रियां बनाई जाती थीं। इससे सिद्ध होता है कि लोग मिट्टी सहित अन्य सामग्री से बर्तन निर्माण में सिद्धहस्त थे।[4] व्यापार और वाणिज्य भी इस कालमें जीविका का प्रमुख साधन था। राजस्थान, अफगानिस्तान और ईरान के साथ यहां के लोगों का व्यवसायिक संबंध था। सिंधुवासी मुख्यरूप से कपास तथा सूती वस्त्र का निर्यात करते थे तथा बदले में ईरान, राजस्थान तथा अफगानिस्तान से तांबा और चांदी, लाजवर्द, फीरोजा का आयात किया जाता था। इससे स्पष्ट है कि इस दौर में अंतरर्देशीय व्यापार काफी उन्नत था। ऋग्वेदिक काल में पशुपालन और कृषि अर्थव्यवस्था के दो मुख्य पहलू थे। इंद्र और पर्जन्य को कृषि का देवता माना जाता था।[5]

ऋग्वेदिक लोगों को कृषि की अच्छी जानकारी थी। इस काल में पूषा पथिकों और व्यापारियों के देवता के रूप में आव्हान किये जाते थे। इस काल में धातुओं की जानकारी मिलती है। यजुर्वेद और अथर्ववेद में लोहा और चांदी का उल्लेख है। फाल (जुताई करने का औजार) का उल्लेख भी इसी काल में मिलता है, उम्मीद है कि यह लकड़ी का बना होता था।[6] माना जाता है कि आर्य लोग लोहे से परिचित थे। इसे अयस् नाम से जाना जाता है।[7]

उन दिनों हल जुताई पर जमीन में पड़नेवाली लकीरों को सीता कहा जाता था। खेतों की सिंचाई कुएं और झील से की जाती थी। कृषि के साथ पशुपालन व्यवसाय का हिस्सा था। पशुओं में गाय, बैल, भैंस, बकरी, कुत्ता घोड़ा और गधा पाले जाते थे। गाय की गणना इस काल में सबसे श्रेष्ठ मानी जाती है। इसके प्रति लोगों में बड़ी श्रद्धा थी। आरएस शर्मा ने ऋग्वेद में 'गऊ' शब्द पर आधारित अन्य शब्दों का विश्लेषण किया है। इसमें गविष्ट, गवेषण, गोधु और गव्य जैसे प्रमुख शब्द हैं। यहां तक की जनों के मुखिया तक को 'गोप' कहा गया है। इस काल में गायों को तीन बार दुहे जाने का प्रमाण मिला है। धन के रूप में इसकी गिनती की जाती थी। आर्यों का अधिकांश

संघर्ष गायों के लिए होता था। ऋग्वेद (1.22.164.27) में गायों के लिए अघन्या शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ होता है ना मारने योग्य। इस काल में एक समृद्ध व्यक्ति को 'गोपति'(गायों का स्वामी) तथा घर की बेटी को 'दुहिता'(जो दूध दुहती है) कहा जाता था। खेतों की जुताई के लिए बैल का उपयोग होता था। माना जाता है कि गधे को पालतू बनाने के बाद वैदिकों को पता चला कि इससे भी तेज चलने वाला जानवर 'अश्व' है जिसे बाद में लोग पालतू बनाकर उपयोग में लाए। ऊन के लिए भेड़ तथा दूध के लिए बकरियां तक का पालन किया जाता था। वैश्य वर्ण की उत्पति ऋग्वेद से मानी गई है। दूसरे अर्थ में ऋग्वेदिक रचनाओं के प्रधान संरक्षक वैश्य को माना गया है।[8]

वैश्य के कर्म उसकी मनोवृत्ति को ध्यान में रखकर कृषि और व्यापार निर्धारित किए गए हैं। कहा जाता है कि विस् में रजस और तमस दोनों गुणों का समिश्रण है इसलिए वह वैश्य कहलाए। इस वर्ण व्यवस्था की उत्पति गुणात्मक सिद्धांत के आधार पर था। ऋग्वेदिक काल में व्यापार एवं वाणिज्य का कम उल्लेख मिलता है। इस काल में ब्राह्मणों को व्यापार करने की मनाही थी। उन्हें विषम परिस्थितियों में वस्त्र और सुपारी का व्यवसाय करने की अनुमति थी। वैदिक काल में जिसने पशुपालन, कृषि और व्यापार कर्म को अपनाया वह 'वैश्य' कहलाया। निष्क शब्द का प्रयोग इस काल में स्वर्ण के लिए किया गया है, सिक्कों का उल्लेख इस काल में नहीं मिलता है। ऋग्वैदिक काल में पणि (धनी व्यक्ति) की तुलना उन कंजूस व्यापारियों में की गई है जो न तो यज्ञ का अनुष्ठानों में भाग लेता है और न बलि देता था, बल्कि अपना धन को दबाकर रखाते थे।[9]

वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था के उद्भव के साथ ही उत्तर वैदिक काल में अर्थव्यवस्था का संपूर्ण भार वैश्य वर्ण पर आ गया था। उत्पादन की जिम्मेदारी तथा प्रमुख करदाता वैश्य वर्ग था।[10] वैश्य को व्यापार के तकनीक का विशेषज्ञ भी माना जाता है। मनुस्मृति के मुताबिक वैश्यों का शिक्षा ग्रहण करना आवश्यक है। यही नहीं बल्कि इस ग्रंथ के नवें भाग में उल्लेख है कि वैश्यों को विभिन्न रत्नों, मोतियों, कीमती पत्थरों, धातुओं, कपड़े, सुंगध, रासायन की पहचान और निर्माण की विधि को सीखना चाहिए। उन्हें गणना और तौलने की कला की महारत होनी चाहिए।[11] वैदिक काल से यज्ञ, यज्ञमान और पुरोहित की व्यवस्था रही है। मनुस्मृति के मुताबिक अध्ययन, यज्ञ, दान देना और लेना ब्राह्मणों के हिस्से था, जबकि प्रजा की रक्षा, दान, यज्ञ, अध्ययन और नृत्य क्षत्रिय के हिस्से था। पशुओं का रक्षण, दान, यज्ञ, अध्ययन, वाणिज्य, ब्याज लेना और खेती वैश्य के हिस्से था, शूद्रों के लिए एक ही धर्म था वह सेवा कार्य।[12]

जमींदार परिवार और भूमिहीन परिवार में जो वस्तु और सेवाओं की आपूर्ति की जाती थी, वह जजमानी प्रथा कहलाई। वैदिक काल के बाद समाज विभिन्न जातियों में बंटी था। प्रत्येक जातियां अपने काम के लिए एक दूसरे पर आश्रित थे। लोगों को अपनी आवश्यकता को देखते हुए वस्तु विनिमय प्रणाली (वस्तुओं और सेवाओं का आदान–प्रदान) करते थे। वक्त के साथ समाज और जातियों में काफी बदलाव आया जिस वजह से जजमानी व्यवस्था में बदलाव निश्चित था। ऋग्वेद काल में प्राप्त विवरणों के मुताबिक उन दिनों नगरों को 'पुर' कहा गया है। वैदिक काल के लोग ऊनी वस्त्र से परिचित थे। उत्तर वैदिक काल में व्यवस्था अधिक स्पष्ट और रूढ़िवादी हो चली थी। इस काल में वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था के रूप में परिवर्तित होने लगी थी। इस काल में विभिन्न वर्णो के बीच संतरे की फांक की तरह दरारें आने लगी थीं।[13]

इस काल में खेती के तरीकों, फसलों में परिवर्तन और नये प्रयोग से कृषि उन्नत अवस्था में थी। इस समय जौ (यव) और गेंहू प्रमुख फसलें थीं, जबकि चावल (ब्रीही) का उल्लेख पहली बार मिलता है। यजुर्वेद में माष (उड़द), मसूर एवं मूंग की दालों का वर्णन मिलता है। अर्थवेद में पालतू पशुओं तथा जड़ी बूटियों और औषधियों का उल्लेख मिलता है। माना जाता था कंचनजंगा और कैलाश (वर्तमान समय चीन में) में अच्छे औषधीय गुण वाले पौधे होते थे। अथर्ववेद में लोहे को 'श्याम अयस्क' शब्द का उल्लेख किया गया है। वेदों में फसल कटाई के लिए काम आनेवाला दरांती, तीर के ऊपरी भाग, चाकू, कुल्हाड़ी का उल्लेख मिलता है। इसके साथ अनेक धातुओं का इस काल के लोगों को ज्ञान था।

धातु शिल्प के अतिरिक्त बड़े पैमाने पर हस्तशिल्पियों के बारे जानकारी मिलती है। इसके अलावा सूत, व्याघ्र, गोप, कर्षक, रथकार, सुवर्णकार, लोहार, नर्तक, कलाबाज, महावत समेत अनेक व्यवसायों का उल्लेख मिलता है। ज्योतिषी, वैद्य और नाई का व्यवसाय भी इसी युग में विकसित हुआ था।[14]

महाजनपद काल अथवा बौद्ध काल (छठी शताब्दी ई.पू.) में मुद्रा का प्रचलन भारतीय अर्थव्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। वैदिक साहित्य में प्रयुक्त निष्क एवं शतमान शब्द अब मुद्रा के रूप जाना जाने लगा था। धातु के सिक्के सर्वप्रथम बुद्ध काल में ही मिलते है, जो चांदी और तांबे के होते थे। इन सिक्कों को आहत या पंचमार्क कहा जाता था। इन सिक्कों पर मछली, सांड़, पेड़, हाथी तथा अर्द्धचंद्र की आकृतियां होती थीं। इस काल में शिल्पी एवं व्यापारी अपने प्रमुखों के नेतृत्व में श्रेणियां बनाकर संगठित थे। शिल्पियों की विभिन्न प्रकार की 18 श्रेणियों का उल्लेख मिलता है।[15] इनमें चंपा, साकेत, वाराणसी, कुशीनारा, राजगृह तथा कौशाम्बी जैसे नगर कला और शिल्प के लिए विख्यात थे। कला शिल्प, व्यापार तथा वाणिज्य के लिए ये संगठन नागरीय जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा थे और तत्कालीन राज्य क्षेत्रों पर इनका उल्लेखनीय प्रभाव था। ईंट निर्माण, बढ़ईगीरी, लोहार, लकड़ी पर नक्काशी, प्रस्तर उद्योग, माला बनाने वाला तथा अनेक शिल्प उद्योग जैसे कुओं का निर्माण करना, राजमिस्त्री, धनुष बाण उत्पादक, कंघा बनानेवाला, टोकरी बिननेवाला, इत्र बनानेवाला, तेल पेरने वाला तथा वाद्ययंत्र बनाने के काम में लगे कारीगर बहुत प्रसिद्ध थे। अष्टाधायी सूत्र साहित्य और प्राचीन बौद्ध साहित्य में काष्ठ(लकड़ी) उद्योग का उल्लेख है। पाणिनी ने विभिन्न उद्योगों का वर्ण किया है। इसमें ग्राम तक्षा का उल्लेख है। इसका अर्थ हर गांव में पांच प्रकार के शिल्पी रहते थे। वैदिकाल में लोहे का काम करने वाले कर्मार मीनीषी शिल्पकार कहा गया है। प्राचीन काल कपड़ों की रंगाई करने वाले लोगों को रंगरेज कहा जाता था। इसी तरह पक्षियों को पकड़ने तथा बेचने वाले को पाक्षिक कहा जाता था।[16]

खास तरह के शिल्पों के विकास तथा मुद्रा के प्रचलन के कारण स्वाभाविक रूप से व्यापार–वाणिज्य में काफी उन्नति हुई। इस काल में न सिर्फ अंतर्देशीय बल्कि विदेशी स्तर पर भी बड़े पैमाने पर व्यापार को बढ़ावा मिला। वाराणसी कपड़ा उद्योग के लिए विश्वविख्यात था। इसके अलावा ऐशोआराम की चीजें विदेशों से निर्यात होती थीं। व्यापार सड़क और समुद्र मार्ग दोनों रास्ते से किए जाते थे। बौद्धधर्म का भारतीय जनता पर महत्वपूर्ण आर्थिक प्रभाव पड़ा।

बौद्ध भिक्षुओं ने अपरिगृह तथा धन संग्रह न करने का उपदेश दिया, जिससे आर्थिक विषमताएं कम हुईं। पशुधन एवं पशुबलि कम होने से पशुधन विकसित हुआ। उनके कृषि कार्यों में अधिक उपयोग से आर्थिक जीवन में विकास हुआ। लोग समय नष्ट करने वाले कर्मकांडों से हटकर काम की तरफ अधिक ध्यान हटकर काम की तरफ अधिक ध्यान देने लगे जिससे व्यापार वाणिज्य में काफी वृद्धि हुई।[17]

उत्तर मौर्यकालीन ग्रंथों में कई तरह के पेशों एवं श्रम करने वालों की जानकारी मिलती है, जैसे शिल्प उत्पादन इस काल में शिल्पकारों और व्यापारियों के अलग–अलग व्यापारिक संगठन और श्रेणियां और अंतर्देशीय और सामुद्रिक व्यापार की जानकारी मिलती है। मथुरा, सांची एवं अन्य स्थानों से प्राप्त शिलालेखों में दानकर्ता के नाम एवं उनके पेशों की चर्चा तथा उनके क्षेत्र की आर्थिक क्षमता एवं संपन्नता का साक्ष्य मिलता है। जातीय व्यवस्था पनपने के साथ ही छोटे राज्य, वतन, कुल–वंश, मंदिर, संप्रदाय, दान, एवं पदवी आदि ग्रामीणों क्षेत्रों के कुछ ऐसे महत्वपूर्ण संस्थान जो सत्ता, हैसियत, सामाजिक आर्थिक लेन–देन, उपाधियों, वाणिज्यक लेन देन और संपदा पर नियंत्रण का परिचायक बने।[18]

मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था विकसित अवस्था में थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा मेगस्थानीज के इंडिका में तत्कालीन कृषि, व्यापार–वाणिज्य, उद्योग धंधे तथा श्रेणियों पर पर्याप्त विवरणी किया गया है। मौर्य प्रशासन के अंतर्गत अनुसार आर्थिक गतिविधियों को संचालित करने के लिए मुख्य रूप से सत्तरह अधीक्षक (अध्यक्ष) होते थे। वे कृषि व्यापार–वाणिज्य, वजन एवं माप, बुनाई, कताई जैसी कला और खनन इत्यादि को नियंत्रित करते थे।[19] महाजनपद युग में व्यापारियों और वाणिज्य के विदेशी संपर्क थे, जिस वजह से श्रेष्ठियों ने नौका निर्माण पर ध्यान

दिया। इस युग में विदेशी आवागमन को शकट, रथ, यान, नाव, का उल्लेख मिलता है। व्यापार विभाग के अध्यक्ष पण्याध्यक्ष था जो वस्तुओं के मूल्य निश्चित करता था। नापतौल विभाग के अध्यक्ष 'पौतवाध्यक्ष' जो वस्तुओं की नापतोल की जांच करता था। इस काल में माप तथा बांटों का वर्णन किया है। चुंगी विभाग का अध्यक्ष 'शुक्लाअध्यक्ष' कहलाता था, जो कर संग्रह करता था जो 1/5 से 1/25 तक था।[20] समाहर्ता कर निर्धारण का सर्वोच्च अधिकारी होता था। 'सन्निधाता' राजकीय कोषागार और भंडारण का संरक्षक होता था। राजकीय भूमि की व्यवस्था करने वाला प्रधान अधिकारी पर दासों, कर्मचारियों और कैदियों द्वारा कृषि कराई जाती थी। राज्य की आय का प्रमुख स्त्रोत भूमिकर था, जिसे भाग कहा जाता था जो उपज का 1/6 भाग था करों की व्यवस्था इस प्रकार थी।

सीता : राजकीय भूमि से होने वाली आय।

भाग : कृषकों द्वारा उत्पादित उपज का 1/5 भाग।

प्रवेश्य : आयात कर माल का बीस फीसद।

निष्क्राम्यः निर्यात कर।

प्रणय : आपातकालीन कर।

बलि : राजा को दी जानेवाली भेंट।

सेतुबंधः सिंचाई कर।

विष्टि : निःशुल्क श्रम एवं बेगार।

इन करों के अतिरिक्त वणिक कर, चारागाह कर, पथ कर का भी वर्णन मिलता है। इस काल में उद्योग धंधे की संस्थाएं संगठित थी जिसे 'श्रेणी' कहा जाता था। अर्थशास्त्र में 21 श्रेणियों का उल्लेख है। इस काल में व्यापार जल और थल दोनों मार्गों से होता था। मिस्त्र, फारस, सीरिया, रोम, तथा अन्य पश्चिमी देशों के साथ इनका गहरा व्यापारिक संबंध था। भुगुकच्च तथा ताम्रलिप्ति प्रमुख बंदरगाह था। तक्षशिला, उज्जयिनी, कौशाम्बी, तोसली, पाटलिपुत्र आंतरिक व्यापार का प्रमुख केंद्र था।[22] इस काल में चार प्रमुख व्यापारिक मार्ग थे जो निम्नलिखित हैंः

क) उत्तरापथ : उत्तर–पश्चिम में पुष्कलावती से पाटलिपुत्र होता हुआ ताम्रलिप्ति बंदरगाह तक।

ख) दक्षिणापथ : दक्षिण में प्रतिष्ठान से उत्तर में श्रावस्ती तक जाने वाला रास्ता।

ग) भृगुकच्छ से मथुरा तक तथा दक्षिणपथ से संबंद्ध हो जाता था।

घ) पाटल से कौशाम्बी तक यह पथ उत्तरापथ से संबंद्ध हो जाता था। 23

मौर्य ने यातायात के साधनों का विकास किया और सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इन्होंने सारे देश के महत्वपूर्ण नगरों और बंदरगाहों को मार्गों से जोड़ दिया था। मौर्योत्तर काल को आर्थिक समृद्धि का युग माना जाता है। खासकर सातवाहन एवं कुषाणकाल व्यापार–वाणिज्य काफी उन्नत अवस्था में थी। ईसा पूर्व पहली शताब्दी में यूनान के एक नाविक व व्यापारी हिप्पालस द्वारा मानसूनी हवाओं की खोज से समुद्री यात्रा शीघ्र तथा बिना कोई रुकावट के संपन्न होने लगी थी। इससे भारत तथा पश्चिमी एशिया के मध्य व्यापार बढ़ा था।

व्यापारिक गतिविधियो को सुचारू रूप से चलाने के लिए विभिन्न श्रेणियां थीं। नासिक अभिलेख में चार जबकि जुन्नार अभिलेख में तीन श्रेणियों का उल्लेख मिलता है। ये श्रेणियां उत्पादन, गुणवत्ता, विक्रय आदि में स्वायत्तशासी संस्थाएं थी। श्रेणियां ब्याज पर पूंजी निवेश भी स्वीकार करती थीं। ब्याज की दर नौ फीसद से बारह फीसद होती थीं।[24] इस काल में व्यापारिक लेनदेन में मुद्रा आवश्यक थी। इस काल में गायों की चोरी करनेवालों को दंड के रूप में मृत्यु दी जाती थी।[25] वहीं हम अगर कुषाण काल की बात करें तो इस काल में अर्थव्यवस्था का प्रमुख स्त्रोत रेशम (Silk Route) मार्ग पर कब्जा था। यह ईरान तथा पश्चिमी एशिया तक जाता था, जो कुषाण साम्राज्य से होकर गुजरता था। रोम तथा पर्शिया के बीच मधुर संबंध न होने के कारण चीन के साथ व्यापारिक संबंध रखने के लिए रोम को मूलतः कुषाण साम्राज्य की मित्रता पर निर्भर रहना पड़ता था। वस्तुतः भारतीय व्यापारी रोमन और चीन के बीच बिचौलिया की भूमिका निभाते थे। भारतीय व्यापारी चीन से रेशम खरीदकर रोम भेजते थे, बदले में रोम से भारी

मात्रा में सोना–चांदी आयात होता था। प्लिनी अपनी पुस्तक नेचुरल हिस्ट्री में लिखता है कि रोम प्रतिवर्ष भारत से विलासिता की सामग्री मंगाने में दस करोड़ सेस्टर्स व्यय करता है। इस बात पर वह दुःख भरे शब्दों में कहता है कि भारत के साथ व्यापार कर रोम अपना स्वर्ण भंडार लुटाता जा रहा है।[26] गुप्त काल में सुरा(शराब) का व्यवसाय ऊंचाई पर था। इसके निर्माण करने वाले लोगों को सुराकार कहा जाता था।[27]

गुप्तकाल में भारतीय इतिहास का एक ऐसा समय है जिसमें समाज, कला, साहित्य, धर्म, अर्थव्यवस्था सभी क्षेत्रों में एक व्यवस्थित और स्थिर दिखाई देता है। कई इतिहास गुप्तकाल को भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग मानते हैं वहीं मार्क्सवादी इतिहासकार का मानना है कि यह काल श्रेष्ठयुग का प्रतिनिधि नहीं करता था, बल्कि गुप्तों की आर्थिक पहले की अपेक्षा निम्नतर थी। इस समय जमीन आय का प्रमुख स्त्रोत था। कृषक भूमिकर नकदी तथा अनाज किसी भी माध्यम से चुका सकने की रियायती थीं। गुप्तसम्राट कृषकों को सिंचाई की सुविधा उपलब्ध कराते थे। इसके लिए उन्होंने कई नहर एवं झीलों का निर्माण करवाए थे। नमक कर, सीमा शुल्क, हारे हुए शासकों से प्रतिवर्ष मिलनी वाली धनराशि, अदालतों के जरिये अपराधियों से लगाए गए जुर्माने आदि आय के प्रमुख जरिया था।[28]

गुप्तकाल में पहले की अपेक्षा सर्वाधिक सोने के सिक्के जारी किए गए थे। हालांकि, गुप्त काल के सिक्के कुषाणकालीन सिक्कों के अपेक्षा कम शुद्ध थे। इन सिक्कों का इस्तेमाल वे सोना और प्रशासन के अधिकारियों के भुगतान के साथ–साथ जमीन की खरीद–बिक्री के लिए करते थे। हालांकि, इस युग में चांदी एवं तांबे के सिक्के भी जारी होने के साक्ष्य मिलते हैं लेकिन इसकी संख्या काफी कम थी। इस काल में लंबी दूरी के व्यापार में पतन होने लगा था। पूर्वी रोमन, साम्राज्य के लोगों ने चीनियों से रेशम उत्पादन की कला सिख ली, जिससे भारतीय निर्यात व्यापार पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ा। इसके अलावा ब्राह्मणों एवं मंदिरों को दिए जाने वाले ग्राम एवं भूमि अनुदान एवं सांमतवादी व्यवस्था के उदय से भी भारतीय अर्थव्यवस्था में गिरावट आई।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था हड़प्पा काल से शुरू होकर गुप्तकाल के प्रारंभिक चरण तक निरंतर विकास करता रहा। वर्ण व्यवस्था के उदय के साथ सभी की अलग–अलग जिम्मेदारियां बंटी हुई थी। भारतीय समाज में तीसरा स्थान जो वैश्यों का था। वे व्यापार के लिए उपयुक्त माने गए थे। इनमें पशुपालक, कृषक और शिल्पी तथा बहुसंख्यक व्यापारी थे। वैश्य समाज में आर्थिक सहभागिता निभाते थे। समय के साथ वाणिज्य व्यापार से जुड़े लोगों की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में बहुत परिवर्तन होता रहा। अलग–अलग स्त्रोतों से पता चलता है कि समाज को सबसे अधिक कर वैश्य देते थे। इनका एक बड़ा समूह वाणिज्य क्षेत्र में कार्यरत था। यह न केवल अंतरर्देशीय बल्कि विदेशीय स्तर पर भी व्यापार करता था। छठीं शताब्दी ई. पू. के बाद से प्रायः गुप्तकाल तक राज्य को वैश्य वर्ग से अन्योन्याश्रय रूप से आर्थिक सहयोग लेना पड़ता था। जब पेशागत तरीके से जुड़े लोगों की अलग–अलग जातियां विभक्त होने लगी इसके साथ ही विभिन्न व्यवसाय और व्यापार से जुड़े लोग संगठित होने लगे। 12 वीं सदी में वैश्य व्यापारी वर्ग ने पूर्ण रूप से कृषि को अपनाया। इसका प्रमुख कारण नगरीकरण और लंबी दूरी के व्यापार का पतन था। इस काल में अर्थव्यवस्था का स्थानीयकरण हो गया। साथ ही जजमानी प्रथा विकसित हुई। भूमि के स्वामित्व का विकेंद्रीकरण होने के साथ ही महता, मेहता, महत्तर और चौधरी जैसे लघु सामंतों का उदय हुआ। इस परिस्थिति को भारतीय सामंतवाद के रूप में देखा जाता है। राज्य के शासन तथा इसके सहयोग में व्यापारी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था, लेकिन गुप्तकाल के अंतिम चरण तक जाते–जाते अर्थव्यवस्था में अवनति के साक्ष्य मिलते हैं। इसका मुख्य कारण नगरीकरण एवं लंबी दूरी के व्यापार का पतन को माना जाता है।

संदर्भ सूची

1. श्रीवास्तव बी. के, *प्राचीन भारत के इतिहास,* एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन्स, आगरा, पृष्ठ– 41।
2. सिंह भगवान, (2007) *हड़प्पा सभ्यता और वैदिक साहित्य,* राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड नई दिल्ली, पृष्ठ–23।

3. वहीं, पृष्ठ–25।
4. बसंत पी.के., *भारतीय अर्थव्यवस्था का इतिहास,* एमएचआइ 05, पृष्ठ संख्या 10।
5. वहीं, पृष्ठ संख्या 8।
6. वहीं, पृष्ठ संख्या 22।
7. पाठक सुशील माधव, (2014) *विश्व की प्राचीन सभ्यताओं का इतिहास,* बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना पृष्ठ–422।
8. पूर्वोद्धित, पृष्ठ–20।
9. शर्मा राम शरण, (2018), *भारत का प्राचीन इतिहास,* आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृष्ठ 105।
10. सिंह भगवान, पूर्वोद्धित–39।
11. Sovani Smita Mayuresh, A study of business practices of vaishya communities in India.
12. Srivastava Jaimala, (2008), Grameen Bharat mein jajmani vyavastha ke badalte swaroop Purvi Uttar Pradesh ke Mau Janpad ke kuch chune hue gaon par aadharit ek samajshastriye adhyayan, V. B. S. Purvanchal University.
13. सिंह भगवान, (2007), *हड़प्पा सभ्यता और वैदिक साहित्य,* राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड नई दिल्ली, पृष्ठ–37।
14. सिंह उपिंदर, (2017), *प्राचीन एवं पूर्व मध्य कालीन भारत,* पियर्सन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 199।
15. पाठक सुशील माधव, पूर्वोधृत, पृष्ठ 446।
16. सिंह भगवान पूर्वोद्धित–39।
17. श्रीवास्तव बीके, (2018), *भारतीय इतिहास एवं संस्कृति,* एलाइड पब्लिकेशन, नई दिल्ली, मुंबई, पृष्ठ 151।
18. शर्मा राम शरण पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 169।
19. चतुर्वेदी ए.के., *प्राचीन एवं प्रारंभिक मध्यकालीन भारत,* एसबीपीडी पब्लिकेशन, आगरा पृष्ठ–113।
20. गुप्त मानिक लाल, (2003), *भारत का इतिहास,* अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर, पृष्ठ 32
21. वहीं, पृष्ठ 33।
22. चतुर्वेदी ए. के., *इतिहास,* एसबीपीडी पब्लिकेशन, आगरा, पृष्ठ 27।
23. वहीं, पृष्ठ 31
24. Omvanshi R, Veterinary Medicine and Animal Keeping in Ancient India.
25. वहीं।
26. अर्थवेद 6.70.1।
27. शर्मा राम शरण, (2018), *भारत का प्राचीन इतिहास,* आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली
28. वहीं

****